मृच्छकटिकम् में वर्णित स्त्रियों की स्थिति

*डॉ. सुमन यादव

विश्व साहित्य में संस्कृत नाटकों को जो गौरव प्राप्त हुआ है उसका श्रेय महाकवि कालिदास, भवभूति तथा शूद्रक जैसे नाटककारों को ही है, जिनकी भव्य रचनाएं अभिज्ञानशाकुन्तलम्, उत्तररामचरित तथा मृच्छकाटिकम् आज भी अद्वितिय हैं साहित्य समाज का दर्पण होता है समाज जिस प्रकार का होगा वह उसी भांति साहित्य में प्रतिबिम्बित रहता है।

मृच्छकटिकम् के रचियमा राजा शूद्रक को बतलाया गया हैं उसकी प्रस्तावना में कहा गया है।

द्वरदेन्द्र गतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च।
द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक उत्यगाधसत्वः।।

मृच्छकटिकम् संस्कृत का एक अद्भुत रूपक है जिसमें 10 अंक हैं कल्पित कथानक के कारण प्रकरण की श्रेणी में रखा जाता है तदनुसार ही इसमें विप्रवणिक् चारूदत्त का चरित्र अंकित किया गया है।

मृच्छकटिकम् में तत्कालीन जीवन एवं समाज का चित्र भी अंकित हुआ हैं संस्कृत के अन्य नाटकों की तुलना में कदाचित् प्रस्तुत प्रकरण में लोक जीवन, सभ्यता संस्कृति तथा शासकीय व्यवस्था के कई पहलों का अधिक स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध है।

1. समाज में स्त्रियों की स्थिति

भारतीय समाज में नारी का स्थान महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये सृष्टि कर्त्ता है। मानव दृष्टि में नर और नारी का स्थान एक दूसरे के पूरक का है। एक के बिना दूसरा अपूर्व है। 'वैदिक आयों की दृष्टि में नारी धर्म एवं अर्थ की प्रदात्री, वैभव और सौख्य की जननी, गृहलक्ष्मी रूपा और सर्वपूज्या समझी जाती थी।'

मनु ने कहा है कि जहाँ नारियों का आदर एवं सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते है और उनको अपमान एवं अनादर की दृष्टि से देखा जाता है वहां सभी कार्य निष्फल सिद्ध हो जाते है। यथा–

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्नु पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।'

भरतमुनि भी अपने नाट्यशास्त्र में नारी के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि संसार में मानवमात्र का चरम लक्ष्य सुख है और सुख का मूलाधार नारी है। यथा –

'सर्वः प्रायेण लोकाऽयं सुखमिच्छति सर्वदा।
सुखस्य च स्त्रियो मूलं नानाशीलधराश्च ताः।।'

परन्तु समय के साथ–साथ नारी सम्बन्धी उस उक्त भावना में भी परिवर्तन आया। मृच्छकटिक के काल तक नारी की स्थिति वह नहीं रही जो वैदिककालीन समाज में थी। इस युग में वह देवी न रह कर गृहिणी मात्र ही रही। उसकी स्वतंत्रता अब समाज में धीरे–धीरे कम होती चली गई तथा कई प्रकार के बंधन उसके चारों और छा गये।

'मृच्छकटिक' के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उस समय नारियों की दो श्रेणियाँ थी – प्रकाशनारी अथवा गणिका और अप्रकाशनारी अथवा वधू या कुल–वधू।

'अलं चतुःशालमिमं प्रवेश्य प्रकाशनारीघृत एष यस्मात्।
तस्मात्स्वयं धारय विप्र तावद्यावन्न तस्याः खलु भोः समर्प्यते।।'

प्रकाशनारी के अन्तर्गत वेश्या वर्ग भी आ जाता था। वेश्या का ही एक दूसरा रूप गणिका होता था परन्तु दोनों में फिर भी बहुत अन्तर होता थां वेश्याएँ अपने रूप और यौवन के द्वारा जहाँ पर अपना जीवन यापन करती थी वहाँ गणिकाओं का काम विशेष रूप से नाचना–गाना होता था। भास ने अपने चारूदत्त नाटक में गणिका के संदर्भ में कहा है। यथा–

एषा रंगप्रवेश कलानां चैव शिक्षया।

'वेश्या' शब्द की व्याख्या करते हुए 'दशरूपक' में अवलोककार धनिक ने लिखा है –

'वेशोभृत्तिः, सोऽस्या जीवनमितिवेश्या। तद्विशेषो गणिका।'

उक्त लक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि गणिका का स्थान वेश्याओं की अपेक्षा ऊँचा होता था।

इसी संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वसन्तसेना भी वेश्या न होकर एक गणिका थी। मृच्छकटिक में अधिकांश तौर पर उसे गणिका कह कर ही पुकारा गया है। यद्यपि कुछ स्थानों पर वेश्या भी कहा गया है।

आर्थिक स्थिति का जहाँ तक सम्बन्ध है, यह वर्ग सम्पन्नतावस्था में था उनके रहन–सहन का ढंग उच्च–स्तरीय था। धन–प्राप्ति का प्रमुख साधन उनका रूप व यौवन होता था जिसके माध्यम से वे किसी के भी उपयोग की वस्तु बन जाया करती थी। परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी उनका सामाजिक स्तर गिरा हुआ था तथा समाज में इनको घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। एक कुल–वधू की तुलना में उनका स्तर काफी निम्न था, जहाँ तक कि एक भद्र पुरूष के घर में वे तथा उनसे सम्बन्धित कोई अन्य वस्तु भी प्रविष्ट नहीं हो सकती थी।

प्रायः रात्रि में जब वे राजपथों पर भ्रमण करती थी या रमण हेतु कहीं जाती थी तो अन्य लोगों के द्वारा इनका पीछा भी किया जाता था। कभी–कभी तो पीछा करने वाले व इन लोगों में वार्तालाप सीमा का अतिक्रमण भी कर जाता था।

परन्तु उक्त सदंर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि कतिपय गणिकाएं वेश्या अभिधा का अपवाद होती थी। ये अर्थ की अपेक्षा गुणों को प्रधानता देती थी। इस प्रकरण को नायिका वसन्तसेना भी वेश्या वर्ग में अपवाद स्वरूपा थी। वह अपने गुणों के कारण कुल–वधू के पद को प्राप्त करती है।

चारूदत्त की पत्नी धूता एक आदर्श पतिव्रता कुलवधू थी जिसकी समता किसी से नहीं की जा सकती। वसन्तसेना इसी सौभाग्य के लिये बड़ी लालयित रहती है। उसे बड़ी प्रसन्नता होती है जबकि वह मदनिका को वधू के रूप में शर्विलक को सौंपती हुई कहती है।

सांप्रतं त्वमेव वन्दनीया संवृत्ता

अब तो तुम ही वन्दनीय हो गयी हो। शर्विलक इस महत्व को जानता है। वह भी मदनिका से कहने में संकोच नहीं करता–

'सुदृष्टः क्रियतामेष शिरसा वन्द्यतां जनः।
यत्र ते दुर्लभं प्राप्तं वधूशब्दावगुष्ठनम्।'

इससे स्पष्ट है कि धनिक वेश्या की अपेक्षा वधूरूप कितना समादृत था पर साथ में यह भी है कि जो स्थान समाज में विवाहित वधू को दिया जाता था वह वेश्या से परिणत वधू को नहीं प्राप्त था।

इस प्रकार तत्कालीन समाज में एक वेश्या भी अपने गुणों के कारण एक सभ्य नागरिक से विवाह कर सकती थी तथा कूल वधू के गौरव को प्राप्त कर सकती थी। चारूदत्त द्वारा वसन्तसेना को पत्नी स्वीकार किये जाने पर राजा आर्यक ने इसे कुल–वधू की उपाधि प्रदान की है।

इससे यह विदित हो जाता है कि तत्कालीन समाज में इस प्रकार की व्यवस्था विद्यमान थी जिसके अन्तर्गत एक राजा किसी वेश्या को उसके पवित्र आचरण तथा अभ्यास की स्वीकृति में वधू की पद्वी कर सकता था। और तब गणिका होने का उसका कलंक प्रक्षालित हुआ मान लिया जाता था।

द्वितीय श्रेणी में जो नारी वर्ग आता है वह अप्रकाशनारी या कुल–वधू कहलाता था। इस वर्ग को स्त्री प्रायः स्वभाव से कोमल व अपने घर को सुशोभित करने वाली होती थी। लज्जा जो कि नारी का आभूषण माना गया है, वह तत्कालीन नारी में विद्यमान था।

इस प्रकार की नारी यद्यपि अपना स्त्रीधन अलग से अवश्य रखती थी परन्तु फिर भी आर्थिक दृष्टि से वह पूर्णतया पति पर आश्रित होती थी। इस सम्बन्ध में चारूदत्त ने विदूषक द्वारा दी हुई अपनी पत्नी धूता की रत्नावली को ग्रहण करते हुए कहा है–

'आत्मभाग्यक्षतद्रव्यः स्त्रीद्रव्येणानुकम्पितः।
अर्थतः पुरूषो नारी या नारी सार्थतः पुमान्।।'

पति ही उनका बहुमूल्य आभूषण होता था तथा वे अपनी पति के विषय में एक भी निंदा का शब्द नहीं सुन सकती थी। पति–परमेश्वर की भावना इस वर्ग की स्त्रियों में विद्यमान थी।

स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग था जो दासियों के नाम से प्रसिद्ध था उन्हें भुजिस्या भी कहा गया है। वे क्रीत होती थीं और उनका कार्य सेवा करना था। वे निश्चित रूप से अपने स्वामी और स्वामिनियों पर आश्रित थीं। इनका स्तर स्वभावतः बहुत निम्न था। उनके स्वामी और स्वामिनियों को रूपया देकर उनके सेवा कार्य से उन्हें मुक्त भी कराया जा सकता था। मदनिका इसका प्रमाण है।

'न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति
न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति।
यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो
न वेशजाताः शुचयस्तथांगनाः।।'

पर्वत की चोटी पर कमलिनी नहीं उगती है, घोडे के भार को गधे नही ले जा सकते हैं, खेत में बिखराये हुए जो धान नहीं हो जाते। इसी भाँति वेश्यालय में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ पवित्र नहीं होती है।

उस समय नारी जाति की स्थिति सामान्य थी। यद्यपि समाज में उनका महत्वपूर्ण स्थान था परन्तु सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिसे वह पूर्णतया स्वतंत्र नहीं थी। वे विवाहोपरान्त अपने पति पर ही पूर्णतया आश्रित रहती थी। नारियां प्रायः पतिव्रता होती थी परन्तु दुर्बल पुरूषों की पत्नियों का अपहरण भी हो जाता था।

नाटक के पात्र शर्विलक के नारी सम्बन्धी विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि उस समय समाज का एक वर्ग ऐसा भी था जो स्त्रियों को अविश्वासनीय तथा निम्न समझता था। यह वर्ग स्त्री को केवल वासनापूर्ति का साधन मात्र समझता था और उसके विषय में असत्य एवं अन्यथा शंकाये करता रहता था। प्रकरण के चतुर्थ अंक में शर्विलक ने नारी जाति को अविश्वनीय एवं चपलस्वभाव वाली कह कर उसकी निन्दा की है –

'अपण्डितास्ते पुरूषा मता मे ये स्त्रीषु च श्रीषु च विश्वसन्ति।
श्रियो हि कुर्वेन्ति तथैव नार्यों भुजडकन्यापरिसर्पणानि।।
स्त्रीषु न रागः कार्यों रक्तं पुरूषं स्त्रियः परिभवन्ति।
रक्तैव हि रन्तव्या विरक्तभावा तु हातव्या।।'

यह वास्तव मे ठीक ही कहा जाता है–

'एता हसन्ति च रूदन्ति च वित्तहेतो–
र्विश्वासयन्ति पुरूषं न तु विश्वसन्ति।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्याः शमशानसुमना इव वर्जनीयाः।।'

और भी –

'समुन्द्रवीचीव चलस्वभावाः संध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः।
स्त्रियो ह्तार्थाः पुरूषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवतत्यजन्ति।।'

चंचल स्त्रियाँ–

'अन्यं मनुष्यं ह्दयेन कृत्वा अन्यं ततो दृष्टिभिराह्यन्ति।
अन्यत्र मुञन्ति मदप्रसेकमन्यं शरीरेण च कामयन्ते।।'

पहले मनुस्मृति में स्त्रियों की स्थिति अच्छी बताई गई है। परन्तु यहां पर शर्विलक द्वारा जो नारी के सम्बन्ध में निन्दनीय वचन कहे गये हैं वे कुलीन नारी के संदर्भ में न होकर वेश्या व गणिका के लिए कहे गये है। शर्विलक द्वारा जब वे उद्दार के विषय में बात चली हुई थी साथ ही यह निन्दात्मक कार्यवाही उसने आवेश में की है, स्वभाविक ढंग से नहीं, क्योंकि आगे जाकर स्वयं उसने नारी जाति की प्रशंसा भी की है–

''स्त्रियो कह नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः।
पुरूषाणां तु पाण्डित्यं शस्त्रैरेवोपदिश्यते।।'

अतः शर्विलक के नारी सम्बन्धी विवेचन से तत्कालीन नारी जगत् की स्थिति का सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

मृच्छकटिक प्रकरण सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि सामाजिक गतिविधियों में विकास अपना मार्ग खोज निकालता है। राजनीतिक, धार्मिक या आर्थिक परिस्थितियाँ जिस प्रकार समाज को बांधने या दबोचने का प्रयत्न करती है, उसी प्रकार सामाजिक परिस्थितियाँ उनके मुक्त वातावरण का निर्माण करने लग जाती है।मृच्छकटिक संस्कृत साहित्य की स्थिति को व्यक्त करता है। कैसी अनोखी बात है कि शताब्दियों बाद भी आज न केवल भारत में वरन् विदेशों में भी इसी से मिलता–जुलता समाज दिखाई देता है।ऐसा लगता है कि राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से ही अपने–अपने समय की कुछ विशेषताएँ रही है। प्रायः संस्कृत के अन्य नाटकों में समाज के उच्च एवं सम्भ्रान्त वर्ग का ही चित्रण देखने को मिलेगा पर इसमें राजा, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चोर, जुआरी, धूर्त, क्रान्तिकारी, वेश्या एवं पुलिस के अधिकारी आदिसभी वर्गों के पात्रों के कार्यकलापों का चित्र तथा सभ्य एवं असभ्य समाज का चित्र आज जैसा यथार्थ रूप में प्रस्तुत है।

यदि अभिज्ञानशाकुन्तल एवं उत्तररामचरित में केवल प्रणयकथा है, मुद्राराक्षस तथा रत्नावली में कोरी राजनीति है तो मृच्छकटिक में यथार्थवादिता के आधार पर प्रेम कथा, राजनीति और सामाजिक चित्रण सभी कुछ है। इसमें तत्कालीन भारतीय समाज का उभरा हुआ चित्र प्रस्तुत किया गया है। वर्ण–व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों का उचित सम्मान था। शूद्र सेवा कार्य में तत्पर थे। चाण्डाल की गणना पंचम वर्ण में थी। कुछ श्रेष्ठ ब्राह्मण राज्याश्रम में रहने से धनवान् थे। चारुदत्त ब्राह्मण होते हुए भी सार्थवाह (व्यापारी) बन गया था।

संस्कृत में कदाचित् कोई ऐसा नाटक नहीं जिसमें समाज के उच्च और निम्न वर्ग को एक साथ संयुक्त किया गया हो और समाज–नीति, धर्मनीति एवं राजनीति को एक स्थान पर प्रस्तुत किया गया है। तत्कालीन सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि पर शूद्रक ने बहुरंगी भारतीय संस्कृति के प्रभावोत्पादक चित्रों को उभार कर अंकित किया है। मृच्छकटिक में तात्कालिन सांस्कृतिक चित्रों में वर्तमान और भविष्य के लिए भी जीवन्त सन्देश है। विभिन्न विचारों का पारस्परिक संघर्ष

तथा अवान्त संस्कृतियों के वैषम्य को दिखलाते हुए भी वे मूलवर्ती भारतीय सांस्कृतिक धारा को सफल बनाये रखने में समर्थ दिखाई पड़ते है। मृच्छकटिक पर तो अब गिरीश कर्नाड के निर्देशन में उत्सव नामक फिल्म की रचना भी हो चुकी है।

संस्कृत के अन्य नाटककार समाज के जिस चित्र को प्रतिबिंबित न कर सके और दूसरे बातों में ही उलझे रहे वहाँ शूद्रक ने यह सिद्ध कर दिखाया कि कला कला के लिए नहीं वरन् कला जीवन के लिए है। समाज के इस रूपचित्र को सामने रखकर वर्तमान समाज अपनी भूलों को सुधार सकता है। अपने रूप का परिष्कार कर सकता है और अपने नैतिक दृष्टिकोणों की दृढ़ प्रस्थापना कर सकता है। मृच्छकटिक में तात्कालिक सांस्कृतिक चित्रों में वर्तमान और भविष्य के लिए भी जीवन्त संदेश है।

असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास विभाग)
एस.एस.जैन. सुबोध पी.जी. कॉलेज

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 मृच्छकटिकम् – 1/3
2 नाट्य शास्त्र, 18/99
विप्रवणिक् सचिवानां पुरोहितामात्यसार्थवाहानम्।।
चरितं यत्रैकविघं ज्ञेयं तत्प्रकरणं नाम
3 संस्कृत नाटकों में भारतीय समाज, डॉ. अनिल कुमार झा, पृ. 220
4 मनुस्मृति, 3/56
5 नाट्यशास्त्र, भरतपुनि, 20/93
6 मृच्छ, 3/7
7 चारूदत्त, भास, 1/24
8 दशरूपक, पृ. 170
9 मृच्छ, 4/24
10 आर्ये, वसन्तसेना, परितुष्टो राजा भवतीं वधूशब्देनानुगृहणति। मृच्छकटिक, अंक 10, पृ. 436
11 मृच्छ, 3/27
12 वहीं, 4/17
13 मृच्छकटिक, 5/20, ज्योत्सना दुर्बल भतृकेव वनिता प्रोत्सार्य मेघैर्हता।
14 मृच्छकटिक, 4/12–13
15 मृच्छकटिक, 4/14
16 वही, 4/15
17 वही, 4/16
18 वहीं, 4/19